

*Date: 05-10-26*

Two or three

Students must be free to choose a third language that is not tested in a Board exam

Editorials

The Supreme Court, through its frequent interventions, is pointing to the various aspects of the three-language policy that the Central Board of Secondary Education (CBSE) does not seem to have thought through. Regardless of its eventual judgment, the Court's intent at this stage seems to be to point to the pitfalls of the policy and at least soften the rough edges. In its latest ruling, the Court has said that current Class 6 students should be given the same relief as students in Classes 7, 8 and 9, whose final Class 10 examination will only be an internal assessment, not a Board examination. The Court is seeking to lessen the load on the students, at least until schools are fully prepared. It had earlier asked if the policy could start from 2027, not 2026. The CBSE has stubbornly resisted compromise at various stages in the hearing. Earlier, the Court had intervened to point out that suddenly learning a new language in Class 9 would be too disruptive if the students had not studied a second "Indian" language until Class 8. The Court had also mooted careful consideration of treating English as indigenous, putting its categorisation as a foreign language under question.

English is a de facto Indian language. It has been in use in India for at least 300 years and is the leading language of education, courts, and professions widely practised by Indians; it also serves as the preferred link language for many. English knowledge has consistently given Indians an edge in employment in global industries such as the IT sector. Indians will want English to remain one of their unique selling points as the government looks to jobs in global industries as a pathway to prosperity. The National Education Policy 2020, though advocating for two Indian languages, also mentions the importance of learning foreign languages to facilitate the global mobility of Indians seeking employment. The Hindu's reportage has shown that since English is the language of instruction in other subjects, it will become the only so-called foreign language students will take in CBSE schools. Many schools will stick to Sanskrit as the second Indian language all the way up to Class 10 while Hindi would be the first. Some schools, especially in the southern States, will continue with the regional language such as Tamil or Kannada as the other Indian language. The practical consequence of the current policy is removing Spanish, French and other foreign languages from schools. But any purported intent of promoting cross-regional language learning may just not be served though the Court has found merit in learning more Indian languages as a way of strengthening the federal structure. A strenuous learning of an additional Indian language serves little practical purpose though it may cater to the atavistic impulses of some. The two-language policy — English and mother tongue — would be best for India. Students can be tested on a third language of their choice through internal assessment, not through a Board examination.



दैनिक जागरण

Date: 05-10-26

भामक इतिहास को सुधारने की पहल

प्रो. रसाल सिंह, (लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के किरोड़ीमल कॉलेज में प्रोफेसर हैं)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) की नौवीं कक्षा की सामाजिक विज्ञान की नई पाठ्यपुस्तक अंडरस्टैंडिंग सोसायटी: इंडिया एंड बियांड भाग-दो में हुआ परिवर्तन एक पाठ्यक्रम संशोधन मात्र नहीं, बल्कि समकालीन भारत में इतिहास के पुनर्पाठ का उल्लेखनीय प्रयास है। पचास वर्षों से अधिक समय तक भारतीय विद्यार्थी मध्यकालीन भारत को मुख्यतः विदेशी आक्रांताओं के नजरिये से पढ़ते आए हैं। दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य की प्रशासनिक एवं आर्थिक व्यवस्था, विकसित स्थापत्य कला, उन्नत एवं अभिजात्य जीवनशैली और अपराजेय सैन्य शक्ति एवं गंगा-जमुनी तहजीब आदि उस पुराने पाठ का केंद्र थे। मुस्लिम तुष्टीकरण करने वाले वामपंथी इतिहासकार उसका गुणगान समन्वय और सहिष्णुता की संस्कृति के नाम पर करते रहे। इस दृष्टि ने निश्चय ही भामक इतिहास-बोध वाली ऐसी पीढ़ियां तैयार कीं, जो स्वदेश की गौरवपूर्ण प्रतिरोध परंपरा और देशज सुशासन व्यवस्था और प्रगत कला-संस्कृति से अपरिचित और अनभिज्ञ रह गईं।

नई पुस्तक में बताया गया है कि भारतीय उपमहाद्वीप ने बार-बार विदेशी आक्रमण, धार्मिक भेदभाव और सामाजिक-आर्थिक संकट झेले, पर स्वदेशी शक्तियों ने लगातार उन आक्रांताओं का प्रतिरोध किया, जो घुसपैठ कर रहे थे। इसमें अनेक ऐसे प्रसंग जोड़े गए हैं, जो अब तक मुख्यधारा की पाठ्यपुस्तकों में या तो फुटनोट में थे या पूरी तरह अनुपस्थित थे। महाराणा प्रताप और अकबर की सेनाओं के बीच 1582 में विजयदशमी के दिन लड़ा गया दिवेर के युद्ध को विस्तार से रखा गया है। मेवाड़ की सेना ने इस युद्ध में मुगल सेना को पराजित करके अपने खोए हुए क्षेत्रों पर पुनः अधिकार प्राप्त किया था। उत्तर-पूर्व भारत के शक्तिशाली अहोम साम्राज्य का उल्लेख है, जिसने लगभग छह सौ वर्षों तक अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता बनाए रखी और सरायघाट के युद्ध (1671) में 'उत्तर-पूर्व के शिवाजी' कहे जाने वाले वीर योद्धा लचित बोरफुकन के नेतृत्व में मुगल सेना को पराजित किया। इसमें दक्षिण भारत के विजयनगर साम्राज्य की सामर्थ्य और प्रतिरोध, मराठों की स्वराज की अवधारणा का भी वर्णन है। औरंगजेब की जजिया सहित भारी कर लगाने और धार्मिक कट्टरता की नीतियों के विरुद्ध 1669 में गोकुला जाट और 1686 में सिनसिनी के जमींदार राजाराम के नेतृत्व में हुए विद्रोह, सिख गुरुओं की आध्यात्मिक और राजनीतिक दृढ़ता, गुरु अर्जुन देव और गुरु तेग बहादुर के बलिदान, गुरु गोविंदसिंह के सशस्त्र संघर्ष और खालसा पंथ की स्थापना आदि के माध्यम से स्थापित किया गया है कि विदेशी आक्रमणों का प्रतिरोध अखिल भारतीय स्तर पर था।

पुस्तक में मंदिरों के विनाश और पुनर्निर्माण का इतिहास भी है। इसमें बताया गया है कि कैसे काशी विश्वनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण पहले राजा टोडरमल और राजा मान सिंह ने कराया, फिर औरंगजेब द्वारा ध्वस्त किए जाने के बाद उसका पुनर्निर्माण देवी अहिल्याबाई होल्कर ने करवाया। जब मंदिर बनाना प्रतिबंधित हुआ तो श्रीमंत शंकरदेव, माधवदेव, चैतन्य महाप्रभु, चंडीदास, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, गुरु नानक, भक्त नरसी, ललदयद आदि भक्त कवियों ने अपने गीतों और पदों के माध्यम से सनातन धर्म, भारतीयता और आध्यात्मिक भावना की रक्षा की। पुस्तक में शासन और सुशासन को केवल पश्चिमी लोकतंत्र (वेस्टमिंस्टर प्रणाली आदि) की देन न मानकर उसकी जड़ें भारतीय परंपरा में खोजी गई हैं। भारत की सुशासन की समझ वैदिक युगीन सभा/समिति, रामायणकालीन रामराज्य और महाभारतकालीन राजधर्म के अलावा मुंडक उपनिषद, कौटिल्य के अर्थशास्त्र और चोल वंश कालीन सेंगोल जैसे विचारों, ग्रंथों और प्रतीकों से विकसित होते हुए आधुनिक संविधान-आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था और नागरिक भागीदारी तक पहुंची है। इसमें कई भारतीय संस्थानों के आदर्श वाक्य इसीलिए जोड़े गए, ताकि विद्यार्थी को यह समझ आए कि हमारी संवैधानिक संस्थाएं अपनी प्रेरणा और प्रतीक अपनी ही परंपरा से लेती हैं।

इस पहल से भारत की युवा पीढ़ी में आत्म-गौरव का पुनर्जागरण होगा, क्योंकि पुराने इतिहास-बोध ने एक प्रकार की हीनता और आत्म-विस्मृति पैदा की थी। भारत की सांस्कृतिक एकता की समझ विकसित होगी। अब विद्यार्थी को भारत एक मानचित्र मात्र नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक चेतना का साकार रूप लगेगा। शासन के भारतीय मानकों की श्रेष्ठ परंपरा का पुनर्स्थापन होगा। इतिहास के प्रति आलोचनात्मक और भारत-केंद्रित दृष्टि का विकास होगा। इस पहल का सबसे दूरगामी प्रभाव विद्यार्थियों के भविष्य-संबंधी दृष्टिकोण निर्माण में होगा। एक समाज जो अपने अतीत में केवल पराजय देखता है, वह भविष्य में भी केवल अनुकरणजीवी बनता है। एक राष्ट्र जो अपने अतीत में प्रतिरोध और पुनर्निर्माण देखता है तथा अपनी शासन परंपरा और प्रतीकों में न्याय, करुणा एवं कल्याण देखता है, वह भविष्य में आत्मनिर्भर बनकर वैसा ही माडल निर्मित करने का उद्यम करता है। यह चेतना ही राष्ट्रीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण का मूलमंत्र है।

*Date: 05-10-26*

संकट का तापमान

संपादकीय



दुनिया भर में जलवायु परिवर्तन और वैश्विक ताप से उपजी समस्या ने अब मौसम को इस कदर प्रभावित करना शुरू कर दिया है कि आम जनजीवन से लेकर खेती-किसानी तथा पर्यावरण के अन्य क्षेत्रों पर भी उसके विपरीत असर दिखने शुरू हो गए हैं। हाल ही में विश्व मौसम विज्ञान संगठन की ओर से यह कहा गया कि अल नीनो का प्रभाव अब साफतौर पर देखा जा सकता है। आने वाले महीनों में इसके असर में और तीव्र बढ़ोतरी की आशंका जताई जा रही है। अगले वर्ष फरवरी तक इसके

जारी रहने का अनुमान है। जहां तक भारत पर इसके असर का सवाल है, तो वहां पिछले महीने तक बरसात में 12.6 फीसद तक की गिरावट दर्ज की गई। अंदाजा लगाया जा सकता है कि देश में वर्षा पर निर्भर खेती-किसानी और फसलों पर इस स्थिति का कैसा असर पड़ रहा होगा। यह बेवजह नहीं है कि देश के कृषि मंत्रालय ने 2026-27 के खाद्यान्न लक्ष्य को कम करके 373.93 मिलियन टन निर्धारित किया है, जो पिछले वर्ष के अनुमानित उत्पादन के मुकाबले 2.63 मिलियन टन कम है।

जाहिर है, अल नीनो और जलवायु परिवर्तन के अन्य प्रभावों के ज्यादा स्पष्ट होकर सामने आने के बाद स्थितियां जटिल होती जा रही हैं। मौसम का चक्र बिगड़ता जा रहा है और स्वाभाविक रूप से इसका असर चौतरफा पड़ रहा है। अकेले महाराष्ट्र में सरकार को राज्य के दो सौ पैंसठ तालुका को सूखा घोषित करना पड़ा है। इसकी मुख्य वजह यह भी है कि पिछले कई वर्षों में इस बार मानसून बेहद कमजोर रहा। इसी वजह से खेतों में तकरीबन तैयार फसलें सूख गईं और किसानों को व्यापक नुकसान हुआ। नतीजतन, कर्नाटक के बाद अब महाराष्ट्र ने भी राज्य को सूखाग्रस्त घोषित कर दिया है। बीते अगस्त में बरसात में गिरावट की वजह से कर्नाटक को सूखाग्रस्त घोषित करना पड़ा था। समूचे पूर्वोत्तर के राज्यों में पिछले सवा सौ वर्षों में इस साल सबसे सूखा मानसून रहा है। वहीं पंजाब और बिहार जैसे कृषि प्रधान राज्यों में भी बारिश में भारी कमी दर्ज की गई।

एक समस्या यह भी है कि मौसम के बारे में जितने भी पूर्वानुमान सामने आते हैं, उनमें से कम ही उसके अनुरूप सही साबित होते हैं खेती पर व्यापक असर और खाद्य-चक्र बिगड़ने से इतर भी मौसम की मार के बहुस्तरीय प्रभाव देखे जा रहे हैं। पर्यावरण संतुलन पर इसके विपरीत प्रभाव की वजह से न केवल मनुष्य के लिए कई तरह की चुनौतियां खड़ी हो रही हैं, बल्कि वन्यजीवों के सामने भी अपने पर्यावास क्षेत्र को बचाने की मुश्किल पेश आ रही है। पेड़-पौधों के अस्तित्व पर इसका कैसा असर पड़ रहा है, यह समझना मुश्किल नहीं है। ठंड के महीनों की अवधि में जिस तरह की कमी दर्ज की जाने लगी है, वह एक अलग चिंता का विषय है। इसी तरह हर वर्ष गर्मी के दिनों में सामान्य तापमान के बजाय लू की ही आशंका ज्यादा हावी रहती है। विडंबना यह है कि मौसम विज्ञान से जुड़े विशेषज्ञ और पर्यावरणविदों की ओर से संकट के कारणों और स्थितियों का विश्लेषण तो सामने आता है, लेकिन इससे बचने के कारगर उपाय फिलहाल नजर नहीं आ रहे। दुनिया भर में मौसम के चक्र में जिस तरह की उथल-पुथल और अनियमितता देखी जा रही है, ऐसे में जरूरत इस बात की है कि हालात का सामना

करने की कोई सार्थक वैश्विक कार्ययोजना और उस पर अमल के लिए ईमानदार इच्छाशक्ति को लेकर टोस पहल हो ।



Date: 05-10-26

एशियाड से हासिल

संपादकीय

जापान में खेलों के एशियाई महाकुंभ का सुखद समापन उत्सव और समीक्षा का समय है। जो पदक जीते हैं, वे उत्सव मना रहे हैं और इस बार जिनका संघर्ष सफल न हुआ, वे समीक्षा कर रहे हैं। उत्सव जितना जरूरी है, उससे ज्यादा जरूरी है समीक्षा। कोई भी देश खेलों में तभी ऊंचाई पर पहुंचता है, जब वह समीक्षा करता है और उसके अनुरूप अपनी कमियां दूर करता है। भारत ने भी अपनी अनेक कमियों को दूर करना शुरू किया है और लगातार दूसरी बार एशियाई खेलों में चौथे स्थान पर रहा है। पिछली बार भारत को 106 पदक मिले थे और इस बार 85 ही मिले हैं, लेकिन जीत का प्रतिशत ठीक है। इस बार भारतीय खिलाड़ियों का दल छोटा था, पर लगभग हर तीसरा भारतीय खिलाड़ी पदक के साथ लौटा है। चीन को देखें, तो उसका हर दूसरा खिलाड़ी पदक के साथ लौटा है, लेकिन ध्यान रहे, चीन खेल दुनिया में एशियाई चैंपियन 1982 में बना। उसके पहले जापान शिखर पर था। शिखर पर पहुंचने और रहने के लिए चीन ने बहुत मेहनत की है। आज चीन से ही नहीं, जापान, दक्षिण कोरिया से भी हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

यह चर्चा बहुत होगी कि इस बार भारत को पिछली बार से कम पदक मिले हैं। भारत को 21 पदक कम मिले हैं, तो चीन के 42 पदक घटे हैं। चीन की झोली में 32 स्वर्ण और 22 रजत पदक घटे हैं। जहां भारत को मेहनत बढ़ाने की जरूरत है, वहीं चीन भी अब ज्यादा मेहनत करेगा। उसे पता है, दूसरे देशों ने खेलों में मशक्कत बढ़ा दी है। मिसाल के लिए, हॉकी में भारतीय लड़कियों ने 44 साल बाद चीनी लड़कियों को फाइनल में हराकर स्वर्ण जीता है। भारतीय लड़कियों की जीत एक बेहतरीन उदाहरण है। यह टीम हमें बताती है कि नए युग में पदक जीतने वाले खिलाड़ी कहां से आएंगे, उन्हें मैदान पर कितना आक्रामक होना होगा और कितना रक्षात्मक? इस मोर्चे पर भारत का कौशल बढ़ा है, लेकिन प्रदर्शन में निरंतरता जरूरी है। वैसे, दुनिया में अभी माहौल खेलों के बहुत अनुकूल नहीं है। आधी से ज्यादा दुनिया युद्ध के चलते आर्थिक तनाव झेल रही है। क्या असर खेलों पर पड़ रहा है? क्या खेल बजट में कमी आई है? क्या धन कुछ खेलों तक सिमट जा रहा है? प्रश्न यह भी है कि हम व्यक्तिगत पदक क्यों कम जीत रहे हैं? 34 पदक टीम या समूह खेलों में आए हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रयास बढ़ाने की जरूरत है।

इनकार नहीं किया सकता, भारत ने खेलों में देर से कदम बढ़ाए हैं और अभी बहुत कुछ करने की जरूरत है। चीन, जापान जैसे देश खेलों में सिरमौर रहे हैं, क्योंकि यहां स्कूली स्तर पर ही खेलों को महत्वपूर्ण जीवन कौशल और नैतिक विकास के साधन के रूप में देखा जाता है। अनुशासन, टीम वर्क और मेहनत पर जोर दिया जाता है। खेल सिर्फ शौक नहीं है, यह जीवन है। जीवन जीने और हर क्षेत्र में आगे बढ़ने की एक सफलतम रणनीति है। संस्थान निजी हों या सरकारी, कहीं भी खेल खानापूर्ति का माध्यम नहीं हैं। खेल संस्कृति का हिस्सा हैं। मिसाल के लिए, उज्बेकिस्तान को देखा जा सकता है। यह देश भारत की तरह ही 21 स्वर्ण जीतने में कामयाब रहा है। वहां की सरकार विगत वर्षों में खेलों को देश के आधुनिकीकरण और राष्ट्रीय गौरव के निर्माण के लिए एक प्रमुख स्तंभ मानने लगी है। खेलों का बुनियादी ढांचा इतना मजबूत कर दिया गया है कि खिलाड़ी स्वतः प्रदर्शन के लिए आगे आने लगे हैं। यह समझना होगा कि खेल केवल पदक ही नहीं दिलाते हैं, पूरे समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था को मजबूती देने का काम करते हैं।

Date: 05-10-26

एआई के भरोसे भविष्य को दांव पे लगाना ठीक नहीं

अनुराग बेहर



दुनिया के धनकुबेरों में से एक ने कहा है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) की दुनिया में बच्चों को जोड़, घटाव, गुणा, भाग सीखने की कोई जरूरत नहीं है; इन सबको अब भूल जाएं। हालांकि, अगर एआई का बुलबुला फूटा, तो बहुत मुमकिन है कि यह धनकुबेर खुद ताकतवर लोगों की सूची से बाहर हो जाएं और दुनिया उनके इस दावे पर हंसती नजर आए। फिलहाल, पैसा एवं ताकत के बल पर उनके कहे हर शब्द एआई समर्थकों के लिए किसी वेदवाक्य से कम नहीं, चाहे वह बात कितनी भी गलत या स्वार्थपूर्ण क्यों न हो।

मैंने इसी तरह का एक और तर्क सुना है कि एआई बच्चों की सोचने की क्षमता को घटा रहा है और बड़े पैमाने पर इसका इस्तेमाल करने से कहीं उनकी यह क्षमता अविकसित ही न रह जाए। हर जगह के स्कूल और विश्वविद्यालय इस बड़े बदलाव को महसूस कर रहे हैं। हालांकि, 'टेक्नोलॉजिस्ट' इसे अपने घिसे-पिटे इस तर्क से टाल देते हैं कि क्या कैलकुलेटर से हम पार नहीं पा गए? हैरानी की बात है, जो लोग तकनीक की पूजा करते हैं, वे इतनी बुनियादी बात को भी नहीं समझ पा रहे। बच्चे सबसे पहले अंक सीखते हैं। कैलकुलेटर के हाथ में आने से बहुत पहले ही वे समझ जाते हैं कि गिनती का क्या मतलब है और जोड़ क्या

करता है? उसके बाद ही मशीन की उपयोगिता होती है, जो उस काम को आसान कर देती है। अब ऐसे बच्चे के बारे में सोचिए, जिसने कभी यह नहीं समझा कि अंक क्या है और उसे पहले ही दिन कैलकुलेटर दे दिया जाए। स्क्रीन पर दिख रहे अंकों का उसके लिए क्या मतलब होगा? इससे भी बुरा यह कि उसे पता ही नहीं होगा कि क्या करना है? एआई ठीक यही खतरा पैदा कर रहा है।

इस खतरे का एक और पहलू है। जो बच्चे पढ़े-लिखे संपन्न परिवारों के होंगे, वे तो इससे बहुत हद तक बच जाएंगे, क्योंकि उनकी सोच विकसित न होने की पूर्ति उनके शिक्षित माता-पिता, शिक्षक, भाई-बहन और उनके घर में भरी पड़ी किताबें कर देंगी, किंतु उस बड़ी आबादी का क्या होगा, जिसके पास ऐसा कोई सुरक्षा जाल नहीं है? अनेक विसंगतियों से भरे हमारे समाज में एआई को प्रगति के ऐसे रूप में पेश करना, दरअसल पहले से कमजोर वर्गों के साथ जान-बूझकर किया गया अन्याय है। यदि हमने इसे अभी नियंत्रित नहीं किया, तो एआई को हमारी दुनिया फतह करने के लिए आक्रमण करने की आवश्यकता नहीं होगी। हम खुद-ब-खुद अपनी दुनिया उसे सौंप देंगे। आखिर सोशल मीडिया ने सार्वजनिक जीवन को तहस-नहस कर ही दिया है।

एआई के खरबपति भविष्यवक्ता इस प्रवृत्ति के वाहक हैं। वह टेक्नोलॉजिस्ट तबके के अग्रणी दल का नेतृत्व करते हैं। अपने स्वार्थ के लिए काम करने वाले उनके जैसे लोग इस दुनिया को गंभीर नुकसान भी पहुंचा सकते हैं। हालांकि, प्रत्येक एआई समर्थक इस तरह से नहीं बोलता है, फिर भी हमें एआई को लेकर बहुत अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है।

भविष्य बताने वालों का एक अन्य समूह अर्थशास्त्रियों का है। बहुत से अर्थशास्त्री पूरी संजीदगी से इस बात पर जोर देते हैं कि एआई के कारण नौकरी छूटने की आशंकाएं बहुत अधिक बढ़ गई हैं। कई अर्थशास्त्री मानते हैं कि एआई पुरानी तकनीक से बिल्कुल अलग है, क्योंकि सोचने-समझने वाला काम करने की इसकी क्षमता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। कई नौकरी जाने की बात को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया डर कहते हैं।

जब ये अर्थशास्त्री घिर जाते हैं, तो वे दूसरी दलील देने लगते हैं। वे मानते ही नहीं कि एआई कंपनियों के आकलन में 'बुलबुला' (बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई कीमत) और नौकरियां खत्म होने का तूफान एक साथ उठ सकता है। जोर देने पर वे अपनी आखिरी दलील देते हैं कि हर नई तकनीक ने कुछ नौकरियां खत्म की हैं और कुछ नई नौकरियां पैदा की हैं, लेकिन उनमें से कोई भी यह नहीं बता पाता कि जो नौकरियां जाएंगी, उनकी जगह आखिर कौन सी नौकरियां ले पाएंगी?

तकनीक बनाने वालों के दावे और अर्थशास्त्रियों के काम करने के तरीके, दोनों ही हमारे भविष्य के साथ जुआ खेल रहे हैं। ऐसे में, भला कैसे कोई अपने भविष्य को दांव पर लगाए?